walking out...

walking on...

स्वपथगामी

अंक - 7

अगस्त 2005

''बचपन से ही मैं कुम्भकारी का काम करता हूँ। अब स्कूल छोड़कर पूरी तरह से इस काम के साथ–साथ सिलाई का काम भी कर रहा हूँ। ये सब मैंने अपनी रुचि से स्वयं करते हुए सीखा है। रुचि रखने वाले लोगों को मैं आमन्त्रित करता हूँ।''
– शिवजीराम प्रजापत, बुहारु, अजमेर

अपना हुनर या ताकत, जो दूसरों के साथ बाँटना चाहते हैं?

''मैं कई प्रकार के कच्चे (raw food) स्वादिष्ट एवं पौष्टिक व्यंजन तैयार करना जानती हूँ। सीखने में रुचि रखने वाले साथियों के साथ मैं कुछ व्यंजन बनाने की विधियाँ बाँट सकती हूँ और उन्हें कुछ तरीके सीखने में मदद कर सकती हूँ।''
– संगीता श्रीराम, चेन्नई
<sangeetha_sriram@yahoo.com>

''किसी छोटे या बड़े कार्यक्रम का आयोजन कैसे किया जाता है? उसकी विस्तृत तैयारी कैसे की जाती है? इस पर मेरे काफी अनुभव हैं, जो मैं स्वपथगामियों के साथ बाँट सकती हूँ।''

– रमा, चेन्नई <samanvaya@vsnl.com>

''मैं एक सामुदायिक मीडियाकर्मी हूँ। सामुदायिक मीडिया को संवाद और समाज में बदलाव के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करते हुए मैं अपने अनुभव बाँटना चाहती हूँ।''
– सुजाता बाबर, नाशिक <sujata@abhivyakti.org.in>

''हम पारम्परिक वाद्य इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि उनका स्वर मौलिक है और लोकगीतों के साथ उनका तालमेल ठीक बैठता है। तबला व हारमोनियम सीखने के इच्छुक साथी आमन्त्रित हैं।''
– तोताराम, पहल समूह, इन्दौर <pahal_g@rediffmail.com>

विविध हुनरों का ताना-बाना

आजकल जब भी कुछ हुनर, कला या कौशल सीखने की बात होती है, अकसर लोग किसी संस्था, संगठन या औपचारिक प्रशिक्षण की बात सोचते हैं। लेकिन हमारा मानना है कि हम सबमें इतना अलग-अलग हुनर और ताकतें हैं कि अगर उन्हें आपस में मिलकर बाँटा जाए तो कभी किसी औपचारिक कोर्स की आवश्यकता नहीं होगी, बल्कि इस प्रक्रिया से हमारे आपसी रिश्ते मजबूत होंगे।

स्वपथगामी नेटवर्क ऐसे अनुभवों, हुनरों और प्रतिभाओं के आदान-प्रदान का प्रतीक हैं, जहाँ हम साथ मिलकर सीखने की प्रक्रियाओं को पोषित करते हैं। साथ मिलकर सीखने के लिए कुछ स्वपथगामियों के आमन्त्रण प्रस्तुत हैं।

खुद ही खोजी, घर की रोजी

– कमलेश मेहता <imkk1968@yahoo.com>

बचपन से ही मुझमें कुछ नया करने की जिज्ञासा थी। स्कूल की पढ़ाई के बाद बिजली फिटिंग का काम सीखा और एक छोटी सी दुकान डालकर वायरिंग आदि काम करने लगा। मेरे पिताजी को अनेक प्रकार के कॉस्मेटिक तथा आयुर्वेदिक दवाएँ बनाने का ज्ञान था। मैंने उनसे वह ज्ञान पाया। अपनी माँ से खाना पकाने की कला सीखी। उनसे मैंने सीखा कि फल और सब्जी पर कुछ प्रक्रिया से कैसे उन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

इसके बाद मैंने गुजरात राज्य खादी ग्रामोद्योग तालीम केन्द्र, गांधीनगर से फल परीरक्षण की तालीम भी प्राप्त की तथा अन्य कुछ संस्थानों में रहकर खाद्य प्रसंस्करण एवं अन्य ग्रामोद्योगों का व्यावहारिक ज्ञान भी पाया है। आयुर्वेद के विविध ग्रंथों तथा पारम्परिक ज्ञान से भी मुझे अनेक उद्योगों के विषय में जानकारी मिली।

एक बार बिजली का काम करते वक्त शॉर्ट सर्किट से मेरी दोनों आँखों को चोट पहुँची और लगभग तीन महीने तक मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया। धीरे–धीरे अलग–अलग उपचार और भगवान की मेहरबानी से दोनों आँखों में दृष्टि लौट आई। लेकिन मैने अपने पिता की सलाह पर बिजली का काम छोड दिया और एक साल तक शेम्पू बनाकर बेचने का काम किया। दूसरे बहुत सारे उद्योगों में संशोधन करके एक साल में कम बजट में किए जा सकने वाले जैविक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री, आयुर्वेदिक औषधियाँ और खाद्य प्रसंस्करण के लगभग 130 छोटे–बड़े उद्योगों को तैयार किया। इनमें सामान्य उपकरणों की आवश्यकता होती है, रोज इस्तेमाल की चीजें बनती हैं और मुनाफा भी काफी मिलता है।

''वैश्विक अर्थनीति'' के शोषण के सामने प्रतिरोध एवं विकल्प के तौर पर स्थानीय उद्यम, उत्पादन एवं स्थानीय वितरण को मजबूत करना होगा। इसलिए इन उद्योगों की जानकारी मैं अपने तक ही सीमित न रखकर उसे बेरोजगार युवक–युवतियों में बाँट रहा हूँ। मैं अपने स्तर पर तथा अन्य संगठनों–समूहों के सहयोग से विविध स्थानों पर जाकर शिविर आयोजित करता हूँ। इसका लाभ उठा कर अनेक बेरोजगार युवक–युवतियाँ गृह उद्योग द्वारा अपने श्रम से आजीविका कमा रहे हैं और अपने पैरों पर खड़े हैं। अबतक मै एक सौ से भी अधिक शिविर आयोजित कर चुका हूँ। प्रत्येक शिविर 3 से 5 दिन का होता है और उसमें 15 से 20 प्रकार के उद्योगों की प्रायोगिक तालीम होती है और साथ ही, विक्रय कौशल की तालीम और उत्पादन से जुड़ी सभी जानकारियाँ जैसे कच्चे माल की उपलब्धता, लाईसेंस आदि की जानकारी दी जाती है। वैसे मैं यह विशेष ध्यान रखता हूँ कि उद्योग स्थानीय संसाधनों पर ही आधारित हो। इस कारण उत्पादन खर्च भी कम आता है। इन उद्योगों में मशीनों की भी जरूरत नहीं होती है, घर के चूल्हे और छोटे–मोटे बर्तनों से भी काम चल जाता है। छोटी सी पूँजी से ये उद्योग शुरू हो सकते हैं और इसके लिए किसी स्कूली प्रमाण–पत्र की भी जरूरत नहीं पड़ती।

इन शिविरों से प्राप्त अनुभव के आधार पर मैने ऐसे 100 उद्योगों के बारे में सरल गुजराती भाषा में एक किताब लिखी है। अब मैं गुजरात के बाहर के राज्यों में बेरोजगार भाई–बहनों को ऐसी तालीम देने की सोच रहा हूँ और साथ ही कुछ नए उद्योगों को शामिल करके एक पुस्तिका हिन्दी में भी प्रकाशित करने का विचार है। ''स्वदेशी अपनाओ'' का सूत्र सार्थक करने के लिए मैं नए अनुसन्धान कर रहा हूँ, जिसका लाभ आने वाली पीढ़ी के साहसिक उद्यमियों को मिलेगा। वर्तमान में मैं रासायनिक उत्पादों के विकल्प में जैविक उत्पाद तैयार कर रहा हूँ। ये जैविक उत्पाद बाजार में उपलब्ध रासायनिक उत्पादों से बहुत सस्ते है और उनकी गुणवत्ता भी रासायनिक उत्पादों से बेहतर है। इसमें मेरे प्रयोग जारी हैं।

जो भी स्वपथगामी इसके विषय में जानकारी या प्रशिक्षण चाहतें है वे निःसंकोच सम्पर्क करें :– 25, जय अम्बिका सोसायटी, भादुवत नगर, इसनपुर रोड, मणिनगर, अहमदाबाद 380 008 फोन : 079–25396263

श्रद्धांजलि

नितिन गाडेकर (1977-2005)

हमारे प्रिय साथी नितिन गाडेकर, संगमनेर (महाराष्ट्र) में स्थित स्वयंसेवी संस्था लोकपंचायत के युवा कार्यकर्ता थे। इन्होंने राष्ट्रसेवा दल के साथ भी काम किया। स्वयं सीखते हुए अपने जीवन की राह खुद बनाने वाले इस स्वपथगामी ने खुद जैविक खेती करते हुए कृषक पंचायत में सक्रिय योगदान दिया।

इनके जोश, ऊर्जा और प्रेरणा से स्वपथगामी नेटवर्क को बहुत ताकत मिली। 1 जून, 2005 को एक कार–दुर्घटना में इनके आकस्मिक निधन से हम सभी को भारी क्षति हुई है। हम सब इनकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

स्कूल का झूठ

अच्छे दोस्त केवल स्कूल में मिलते हैं! (?)

– युवराज खेर <pahal_g@rediffmail.com>

जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब मैं अपनी भावुकता के कारण गहरी दोस्ती चाहता था। मैंने सुना था कि स्कूल में ही अच्छे दोस्त मिलते हैं। लेकिन स्कूल की वास्तविकता के अनुभव से मेरी मानसिकता में बदलाव आया।

स्कूल में मैंने देखा कि शिक्षक बच्चों को दो श्रेणियों में विभाजित कर देते हैं, एक होशियार, सीधे–सादे और शिक्षकों के आज्ञाकारी होते हैं, दूसरे बदमाश और मनमानी करने वाले होते हैं। मैं दोनो वर्गो में रह चुका हूँ और समझ चुका हूँ कि शिक्षकों द्वारा समूहों में भेद का जो बीज बोया जाता है वो पेड़ बनकर दोस्तों में तकरार का कारण बनता है। चूँकि शुरूआत में मैं होशियार बच्चों की श्रेणी में था, इसलिए कभी–कभी मेरे मन में दूसरे बच्चों के प्रति क्रोध आता था। अतः मैं कभी उनसे ठीक से रिश्ता नहीं बना पाया। जिससे दोस्ती हुई, वह भी स्कूल की प्रतियोगी भावना के चलते सच्ची दोस्ती का रूप नहीं ले पाई। जब मैं परीक्षा दे रहा था, तब साथ बैठे दोस्त ने मुझसे एक सवाल का जवाब पूछा। मैंने उसे नहीं बताया, क्योंकि स्कूल में हमें सिखाया गया था कि अपने जवाब दूसरों से छिपा कर लिखे जाएँ। इससे उसके मन में मेरे प्रति क्रोध आया। उसे इस बात से चोट पँहुची थी कि मेरे न बताने से वह फेल हो जाएगा और घर पर मार पड़ेगी। उसका क्रोध स्कूली व्यवस्था पर नहीं बल्कि मुझ पर केन्द्रित हो गया, जिससे मैंने अपना एक दोस्त खो दिया।

कॉलेज छोड़ने के बाद मेरे मन की प्रतियोगी भावना समाप्त हुई। अब मुझमें ना किसी से आगे निकलने की ख्वाहिश बची है और ना ही किसी से पीछे रह जाने का डर। अब मैं सीखने के मामले में स्वतंत्र हूँ। मेरे लिए दोस्ती केवल अपने वर्ग के लोगो में सिमटे रहना नही, बल्कि आपसी समझ और भाव–जगत के विस्तार का एक माध्यम है।

मैं झाड़ू का काम सीखने एक गाँव में राजेश के घर जाता था। उन्होंने मुझसे सिखाने का पैसा नहीं लिया। मैंने उस काम में आने वाली समस्याओं को जाना। इस तरह हमारे बीच सहयोग और आत्मीयता का रिश्ता कायम हो गया, जो स्कूल में सम्भव नही। स्कूल में इतना समय तो मिलता नहीं कि हम अपने विचार बाँटे, वहाँ केवल शिक्षकों की आज्ञाओं का पालन करना होता है।

स्कूल में दोस्ती को कमजोर करने के अन्य कारण भी हैं, जैसे स्कूल में दिये जाने वाले भारी किताबी जानकारियाँ और होमवर्क, जिसके बोझ से छात्र दब जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि आसपास क्या चल रहा है? वे अपने समाज से कटते जाते हैं और उन्हें दोस्ती करना तो दूर, मानवीय संवेदनाओं से भी कोई सरोकार नहीं होता। यदि आप भी अपने मन को टटोलेंगे तो इस झूठ को अपने अनुभव के आधार पर पहचान जाएँगे।

बनी-बनाई दुनिया

देशी मेले की शुरूआत

– पन्नालाल पटेल <panna_lal_patel@yahoo.com>

समाज में कुछ बातें, कहावतें और पहेलियाँ प्रचलित हैं, जैसे – पहला सुख निरोगी काया, जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन। ये महज कहावतें नहीं, इनमें गूढ़ रहस्य है, जो इन्हें समझ रहे हैं, वे अच्छी तरह जी रहे हैं।

मेरा परिवार खेती से जुड़ा है। हम अनाज, सब्जियाँ, दालें उगाते आ रहे हैं। हम अपने स्वयं के घर में काम आने वाली चीजों में बहुत कम रासायनिक खाद व दवाइयाँ डालते थे। लेकिन बाजार में बेचने के लिये ये सब ज्यादा डालते रहे हैं, जिससे उत्पादन ज्यादा हो। यह केवल मेरी बात नहीं, बल्कि बहुत से किसानों की है।

जब इस पर घर में बातें हुई, कुछ गहराई तक समझ बनी तो लगा कि हम अपने लिये तो सात्विक चीजें उगाकर खाते हैं, लेकिन दूसरों के लिए...? और जो लोग सात्विक चीजें खाना चाहते हैं, उन्हें वो उपलब्ध नहीं। ऐसी ही कुछ बातों को लेकर कुछ किसान व समुदाय ढूँढ़े, जो जैविक खेती कर रहे हैं। उनसे बातचीत करके गेहूँ, मक्का, चावल, उड़द, चवला, चना, मटर, शहद, गुलाब शर्बत, गुलकन्द, देशी गाय का घी, गुड़ आदि चीजें इकट्ठी की। उन सबको ''हामो देशी मेला'' के माध्यम से लोगों के सामने रखा। मेले में हमने पानी के संग्रहण का प्रयोग, खादी के बैग, कबाड़ से जुगाड़, देशी औषधियाँ, आभूषण बनाना व हाथों से मिट्टी की चीजें बनाना आदि कार्यशालाएँ भी शुरू की।

इस मेले में यह तय था कि इसे खरीदने–बेचने की मानसिकता से दूर रखना है। क्योंकि इससे उगाने वाले और लेने वाले के बीच रिश्तों में प्रगाढ़ता नहीं आती। ऐसी बातों को आधार मानकर लोगों से बातचीत होती रही कि इसमें हमारे आपसी सीखने के नये–नये मौके कैसे बढ़ें? लोग अपने प्रयोग खुद कैसे करें? सात्विक चीजें उगाने वाले और हाथों से पारम्परिक काम करने वाले लोग प्रोत्साहित कैसे हों? शहर के लोग अपने स्वास्थ्य व खान–पान को वापस कैसे समझें?

इन्हीं बातों को लेकर मैं प्रयास कर रहा हूँ कि लोग डिब्बा बंद व कम्पनियों के माल के बजाय आम लोगों के हाथों से बनी चीजों का उपयोग करेंगे, तो स्वास्थ्य के साथ–साथ आर्थिक दृष्टि से भी समाज के लिये महत्वपूर्ण योगदान होगा। पिछले कुछ सालों से मैं अपने खेत में केमिकल का उपयोग बिल्कुल खत्म करने के लिए प्रयोग कर रहा हूँ। ये काम करते हुए मेरे खुद के सामने बहुत से प्रश्न आने लगे हैं, जैसे– मैं जो कपड़े पहन रहा हूँ और मोटरसाइकिल का उपयोग कर रहा हूँ, उनसे प्रकृति को कितना नुकसान हो रहा है? मैं प्रयास कर रहा हूँ कि इस बनी बनाई दुनिया से बाहर कैसे निकलूँ।

कबाड़ से कल्पनाशीलता

– रंजन डे, चेन्नई <bridginggaps03@yahoo.com>

जब मैं चार साल का था, तब से कबाड़ से जुगाड़ कर रहा हूँ। मैं अपने माता–पिता की तीन सन्तानों में सबसे छोटा था और उनसे मैं लगातार यह सुनता रहता था कि वे हमारे लिए मँहगे खिलौने व किताबें लाकर नहीं दे सकते। क्योंकि मैं अधिकतर खिलौने तोड़ दिया करता था या खो देता था। इसलिए मैंने अपने आस–पास मौजूद कबाड़, खास तौर से कागज व सेलो टेप से अपने खिलौने खुद बनाना शुरू किये।

मुझे लगता हैं कि कबाड़ से मेरा रिश्ता बनना यहीं से शुरू हुआ। मेरा मानना है कि उसमें मेरी कल्पनाशीलता के विकास के लिए पर्याप्त संभावना थी और अब भी हैं। मेरे भाई और बहन हमेशा ही किसी बोर्डिंग स्कूल में रहे हैं और हमें सिर्फ छुट्टियों में ही साथ खेलने का मौका मिलता था। शेष समय मैं अपने ख्वाबों की दुनिया में खोया रहता था और कबाड़ की सहायता से उसे साकार रूप देने की कोशिश करता था। इसमें मुझे कभी बोरियत महसूस नहीं हुई। उसमें हमेशा ही कुछ न कुछ नया करने को रहता था, वह चाहे खिलौना कार बनाना हो या हवाई जहाज, पानी के जहाज, रेलगाड़ी बनाना हो या फिर जंगल–टापू जैसे काल्पनिक परिवेश बनाने हो। ये सब मैं अपने प्यारे कागज के कचरे से बनाया करता था।

बचपन में मैं पूरे के पूरे शहर, जिनमें बदरगाह, रेल और उसके डिब्बों समेत रेल्वे माल गोदाम, एक महानगर जिसमें भूमिगत और हवाई पुल हों, गगन चुम्बी इमारतें, दूकानें, कारखाने, हवाई अड्डे सभी कुछ होता था; बनाया करता था। मेरा काल्पनिक शहर मेरे भाई के पत्रिकाओं के सदस्यता कार्ड से साकार रूप लेता था।

अब भी मैं नहीं कह सकता कि मुझमें यह कौशल कहाँ से आया, लेकिन मुझे अपने भाई से अवश्य प्रेरणा मिली, जिसमें एक बार विश्व के प्रसिद्ध युद्ध के जहाजों का बेड़ा कार्डबोर्ड की सहायता से बनाया था। उसने साँप सीढ़ी और लूडो जैसे कुछ खेल भी कबाड़ से बनाए थे, जो उस समय (1970 के दशक में) बाजार में मिलने वाले खिलौनों से कहीं बेहतर थे। मैने सोचा जब वह ये सब कर सकता हैं तो मैं क्यों नहीं?

मैने स्कूल के बाद बड़े–बड़े तथा तेज चलने वाले वाहनों के मॉडल बनाना जारी रखा। उस दौरान मैंने कार्ड बोर्ड और कागज के साथ अन्य सामग्री, जैसे प्लास्टिक, रबर व कपड़े का भी इस्तेमाल शुरू कर दिया था। स्कूल के आखिरी दिनों में मैं एक धुनी कलाकार बनना चाहता था। अपने दोस्तों से मिली चुनौती के जवाब में मैं नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन, अहमदाबाद की प्रवेश परीक्षा में बैठा। उनका दावा था कि एक उज्वल युवा प्रतिभा ने एन. आई. डी में प्रवेश लिया है, जबकि मेरे लिए वह विकल्पों की सूची में अन्तिम था।

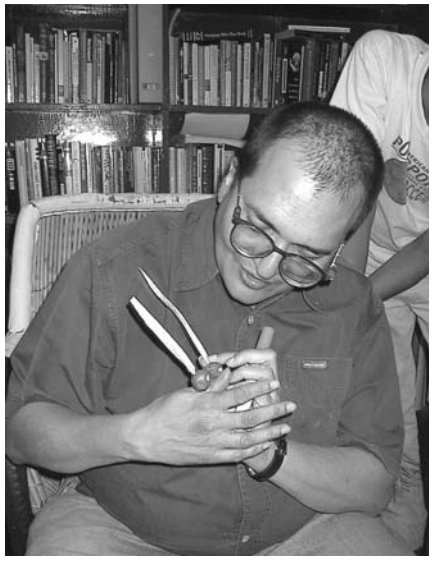

मेरे मॉडल बनाने के अनुभवों को देखकर एन. आई. डी के अध्यापकों ने सोचा कि मैं इण्डस्ट्रियल डिजाइन का काम अच्छी तरह कर सकूँगा। जबकि मेरी योजनाएँ अलग थी। मैं वहाँ ग्राफिक डिजाइन सीखने गया था। तथापि मैंने बहुत सी चीजों (जैसे कपड़ा, धातु, प्लास्टिक और लकड़ी) के साथ काम करना सीखा था, जो मेरे औपचारिक पाठ्यक्रम की सीमाओं से बाहर था। पाँच वर्ष डिजाइन का प्रशिक्षण लेकर मैं बगैर डिप्लोमा लिये उस संस्थान से बाहर आ गया।

मैंने पाया कि डिग्री नहीं होंने से कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे काम देने वाले लोगों की रुचि इस बात में होती है कि मैं क्या काम कर सकता हूँ, उन्हे मेरी डिग्रियों से कोई सरोकार नहीं होता है। एन. आई. डी में मेरे किये गये कामों के अनुभवों और विविध प्रकार की सामग्रियों के साथ काम करने की क्षमता के साथ मैं कबाड़ से नए–नए प्रयोग करते रहता हूँ। और अब मेरी बचपन की जानकारी भी बढ़ गई हैं।

अपने इस नए हुनर से मैं खिलौने, कठपुतली, नाटक के सेट, फर्नीचर बनाने के साथ–साथ कम लागत से बनने वाली शिक्षण सामग्री भी बनाता हूँ। ये सब मैं अपने ग्राफिक डिजाइन के काम के साथ–साथ खाली समय में करता हूँ। सप्ताहान्त में मैं बच्चों के साथ कार्यशाला भी करता हूँ। सोलह साल तक इस अन्धी दौड़ में भागने के बाद दो वर्ष पूर्व मैंने खुद को फिर से जानने और ऐसे काम में लगने का निर्णय किया, जिसमें मैं अपनी सभी क्षमताओं का उपयोग कर सकूँ। अब मैं भारत भर के कोने–कोने में जाकर प्रयोगात्मक कार्यशालाएँ करता हूँ।

सच कहूँ, तो मुझे इतना मजा कभी नहीं आया। जो भी कबाड़ मिलता हैं, मैं उसे इस्तेमाल करता हूँ। जीवन बड़ा आनन्ददायी हैं, जिसमें बहुत मजा हैं। नए लोगो से मिलना, उनसे संवाद करना, विचारों का आदान–प्रदान करना और यात्राएँ करना। और इन सबसे अधिक मुझे उन बच्चों के साथ काम करने में आनन्द मिलता है, जो मेरी ही तरह कबाड़ से प्रेम करते हैं। इस प्रकार अपने सपनों को साकार करने के लिए मैं अपने हाथ से नई–नई चीजे बनाते रहता हूँ। अब मैं उस दिन का सपना देख रहा हूँ, जब मैं कबाड़ और पर्यावरण के लिए सुरक्षित सामग्री से अपना घर बनाऊँगा, जो मेरे व्यक्तित्व की तरह प्रकृति से एकाकार होगा ।

आन्तरिक विकास का माध्यम थिएटर

– आशीष कुमार तिवारी <ashish_kr_tiwari@rediffmail.com>

मैं दिल्ली में अपने साथियों के साथ थियेटर करता हूँ। थियेटर करने से पहले मैं बहुत संकोची था। इस वजह से मैं किसी चीज में रूचि भी नहीं रखता था। शर्म, हिचक, डर, आत्मविश्वास में कमी की वजह से मैं किसी से रिश्ता भी नहीं रखता था।

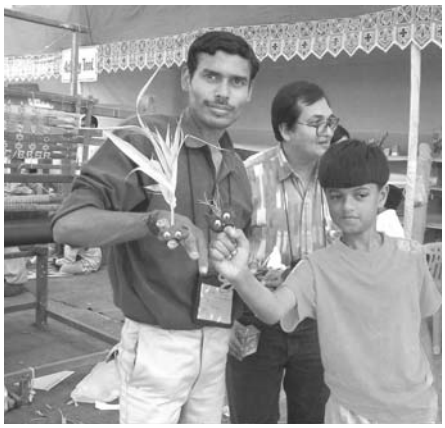

एक बार 'मंज़िल' (एक संस्था जिसमें मैं जाता हूँ) में वॉल्टर पीटर जी ने थियेटर की कार्यशाला की, इसमें मैंने हिस्सा लिया। इसमें कई लड़के–लड़कियों ने साथ मिलकर नए खेल खेले, एक–दूसरे के बारे में जाना, अभिनय किया, साथ मिलकर कबाड़ चुनकर लाए और उनका उपयोग किया। सामूहिक गतिविधियों में हम अपने बारे में ही नहीं, बल्कि सबके बारे में सोचते थे। इस तरह मैं अपने अन्दर छिपी हुई क्षमताओं और प्रतिभाओं को खोजने लगा। इस प्रकिया ने मेरे अन्दर मूलभूत परिवर्तन किये। अब मैं लोगों से खुलकर मिलने लगा हूँ। मैं लोगों से प्रश्न भी पूछता हूँ (स्कूलों में प्रश्न पूछने की आजादी नहीं है)।

इस कार्यशाला ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया। मेरा विचार बना कि भविष्य में मैं भी थिएटर करता रहूँगा। थिएटर में अकसर विभिन्न विषयो में चर्चा होती है। इससे मेरे सोचने समझने की क्षमता में वृद्धि हुई।

मैंने दोस्तों के साथ मिलकर 'चार पापी एक इंसान' नाटक किया। मंच पर अभिनय का यह मेरा पहला अनुभव था। नाटक समाप्त होने के बाद लोगों ने मेरी कला की सराहना की, इससे मुझे और ताकत मिली। मैं अब तक आठ नाटकों में अभिनय कर चुका हूँ और कई बार निर्देशन भी किया है। इसके अलावा पंचगनी, फरीदाबाद, अहमदाबाद, भुवनेश्वर में कार्यशालाएँ कर चुका हूँ।

मैंने पाया कि अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाने का यह सहज माध्यम है। नाटकों द्वारा हम अपनी अभिव्यक्ति के अलावा समाज के हित में विकल्प तलाशने के लिए लोगों से संवाद करते हैं। इस दौरान कई सवालों के जवाब खुद ही मिल जाते हैं। समस्या के प्रति विचार बनते हैं और एक–दूसरे के विचार जानने को मिलते हैं।

जब मैंने अपना पहला नाटक 'परसों युग' लिखा, तो उस दौरान मैंने अनेक नई चीजें सीखीं। जैसे क्या कहानी है? नाटक में कौन–कौन से किरदार हैं? परिस्थितियाँ कैसी है? हमें नाटक में क्या दर्शाना है? कपड़े किस प्रकार के होंगे? आदि सवालों पर विस्तार से सोचना होता है। मेरा वह नाटक सामाजिक कुरीति – भ्रूण हत्या पर आधारित है। मैंने इस नाटक के ज़रिए भविष्य में लड़कियों के जीवन तथा समाज पर पड़ने वाले दुष्परिणामों को दर्शाया है। इस नाटक के बाद मैंने कुछ और नाटक भी लिखे।

जब कभी मैं स्कूल के स्टेज पर भाषण देने जाता था तो मेरे पाँवों में कँपकँपाहट होती थी, मैं टीचरों की नजर में अच्छा बच्चा था, वो मुझे बार–बार खड़ा करते और स्टेज पर बोलने को कहते, मैं भाषणों को रटता और स्टेज पर उन्हें उगल कर आ जाता था। मगर अब कभी मुझे स्टेज पर जाने का मौका मिलता है, तो मैं उस मौके पर श्रोताओं को शामिल करने की कोशिश करता हूँ, यह मैंने नाटक करते हुए सीखा है।

थियेटर केवल एक्टिंग करना ही नही, बल्कि ऐसी प्रक्रिया है, जो हमारे आन्तरिक विकास में मदद करता है तथा हमारे विचारों व दृष्टिकोण को विस्तृत करता है।

अब मैं सिर्फ थियेटर ही नहीं, अन्य विभिन्न गतिविधियों में हिस्सा लेता हूँ। मैं अपने साथियों के साथ अलग–अलग जगह घूमने जाता हूँ, बच्चों को संगीत और नाटक के कार्यक्रमों में ले जाता हूँ। विगत दो वर्षों से दिवाली के मौके पर मैं अपने साथियों के साथ मोमबत्तियाँ भी बनाता हूँ। हम खुद करके सीख रहे हैं कि एक उद्यम किस तरह किया जाता है। इसमें हम सारे निर्णय सामूहिक रूप से करते हैं।

जो स्वपथगामी अपने थियेटर के अनुभव मुझसे बाँटना चाहते हैं या मेरे अनुभवों का लाभ लेना चाहते हैं, सम्पर्क करें।

नई राहों की खोज में एक अनूठा परिवार

श्रीमती करूणा फुटाणे अमरावती जिले में अपने परिवार सहित जैविक खेती एवं स्वावलम्बन के विभिन्न प्रयोग करते हुए 'संवाद' समूह का संचालन कर रही हैं। आपने अपने जीवन के शुरूआती वर्ष आचार्य विनोबा भावे के सानिध्य में बिताए एवं कई आन्दोलनों में सक्रिय रही हैं। आपसे हुई बातचीत प्रस्तुत है :-

आप विनोबा-आश्रम से कैसे जुड़ीं?

मेरे माँ–पिताजी विनोबाजी के आश्रम में कांचनमुक्ति (पैसे के बिना जीवन) के प्रयोग में सहभागी थे। फिर भूदान–आन्दोलन शुरू हुआ, तो उसमें भी सक्रिय रहे। 1959 में महिलाओं के लिए पवनार (वर्धा) में आश्रम की स्थापना हुई, तो माँ उसकी सदस्य बनी और उनके साथ मैं भी वहाँ रहने लगी।

आश्रम में आपके क्या अनुभव रहे?

विनोबाजी का शिक्षा के बारे में मौलिक चिन्तन रहा है और वे आज की शिक्षा को नाकामयाब मानते रहे। इसलिए मेरे माँ–पिताजी ने मुझे स्कूल न भेजने का तय किया।

पढ़ना–लिखना तो मैं खेलते–खेलते सीखी। मराठी यहाँ की भाषा है और आश्रम में हिन्दी बोली जाती है (क्योंकि पूरे भारत–भर की बहनें वहाँ हैं)। तो ये दोनों भाषाएँ भी सहज ही सीख गई। पिताजी की भाषा गुजराती थी, तो वह भी आ गई। संस्कृत और अंग्रेजी, गणित और विज्ञान पिताजी पढ़ाते थे। इतिहास और भूगोल तो ऐसे ही किसी उपन्यास की तरह पढ़ लिया करती थी। परीक्षाएँ कभी होती नहीं थी, तो जो पढ़ती थी वह सब सीधे ही दिमाग में उतर जाता था।

आश्रम में विनोबाजी से मिलने दुनिया भर के विद्वान, शास्त्री, राजनेता, उद्योगपति से लेकर सर्वसामान्य जन तक आते रहते थे। इन सबसे विनोबाजी का होने वाला वार्तालाप ज्ञान का खजाना ही था। खेती, गोशाला, प्रेस ये आश्रम में थे ही। रसोई भी आश्रमवासी खुद ही बनाते हैं। तो ये सब प्रत्यक्ष काम करते–करते सीखा। 14–15 साल की उम्र में जे. पी. द्वारा स्थापित तरुण शान्ति सेना की सदस्य बनी, तो विविध आन्दोलनों में शरीक होने का मौका मिला। उससे समाज की स्थिति का भान आया। अब शादी के बाद गाँव में रहने लगी, तो यहाँ के लोगों से, परिस्थितियों से सीख ही रही हूँ।

सीखने की कोई रोचक घटना?

छोटी थी 7–8 साल की। एक रात बहुत बारिश आई। सवेरे उठकर देखा, आश्रम के सामने की नदी पानी से भर गई है। विनोबाजी ने मुझसे पूछा, 'नदी में बाढ़ क्यों आई?' मैंने कहा, 'रात में इतनी बारिश जो आई।' बाबा हँस दिए और बोले – 'जहाँ बारिश आती है, वहीं बाढ़ नहीं आती। जहाँ बारिश आती है, वहाँ से पानी झरनों के रूप में, छोटे–छोटे बहावों में नीचे की ओर दौड़ता है और इस तरह अनेक बहावों का पानी नदी में मिलने पर बाढ़ आती है। आज अपनी नदी को बाढ़ दीख रही है, इसका मतलब ऊपर कहीं अच्छी बारिश हुई होगी।' फिर बादल कैसे बनते हैं, बारिश कैसे होती है, ये सब बारिश में ही खड़े–खड़े समझते हुए मैंने भूगोल का एक बड़ा पाठ सीखा।

आपके बच्चे किस तरह सीख रहे हैं?

मेरे दोनों बच्चे – विनय और चिन्मय स्कूल तो गए। लेकिन हम उन्हें प्रत्यक्ष कुछ करते–करते सीखने के लिए उकसाते रहे। चिन्मय ने छुटपन में स्कूल जाने से इन्कार किया, तो चौथी तक वह घर पर ही खेलते–कूदते, खेत में काम करते हुए सीखा। अब बारहवीं के बाद भी घर पर ही रहकर अलग–अलग चीजें सीख रहा है। विनय शुरू से स्कूल गया जरूर, पर उसका मन उसमें कभी रमा नहीं। हमने प्रोत्साहित किया कि वह कॉलेज छोड़ दे और रुचि–अनुसार जैसा मौका मिले, वैसे सीखे।

यहाँ हम जैविक खेती के प्रयोग करते हैं, तो दोनों बच्चे खेती के बारे में अच्छी तरह खुद काम करते–करते सीख गए हैं। पवनार में नानाजी के पास रहे, तो वहॉ के प्रेस में कम्प्यूटर पर काम करना सीख गए। 'अभिव्यक्ति' (नाशिक) के साथ डॉक्यूमेंटरी फिल्म्स बनाने की प्राथमिक बातें सीखे, तो शिक्षान्तर (उदयपुर) जाकर आगे की तकनीक सीख आए। आदिवासी बच्चों के साथ–साथ रहते तैरना, पेड़ और पहाड़ी चढ़ना सीख गए। हमें जंगल में कोई मैकेनिक नहीं मिलता, तो सायकिल–स्कूटर ठीक करना, इलेक्ट्रिक फिटिंग करना भी सीख गए।

आज आप अपने बच्चों और स्कूलित बच्चों में क्या फर्क महसूस करती हैं?

दोनों बच्चे लेख लिखते हैं। क्या उचित, क्या अनुचित यह सोच कर उस बारे में अपनी सोच समाज के सामने निर्भीकता से रखते हैं। आज उनमें इतना आत्मविश्वास है कि वे कहीं भी मेहनत कर कमा खा सकते हैं, जीवन में आने वाली समस्याओं का सफलता से सामना कर सकते हैं। ऐसा आत्मविश्वास स्कूली–पढ़ाई से कभी नहीं मिल सकता।

आज की पढ़ाई बच्चों को साँचे में ढाल देती है। उनका जीवन भी एक साँचे में बँध जाता है। ऊबन उनके जीवन का अंग बन जाती है। तो तरह–तरह के मानसिक रोगों का वे शिकार बन जाते हैं। प्रत्यक्ष जब समस्याएँ सामने खड़ी होती हैं, तो वे हड़बड़ा जाते हैं और निराशा उन्हें घेर लेती है।

इसमें से उबरने का रास्ता बनाना 'स्वपथगामी' बनना ही है। प्रकृति ने हमें ग़लतियाँ करते–करते सीखने का और आगे बढ़ने का मौका दिया है, जो अन्य प्राणियों को उपलब्ध नहीं। यदि हम खुद को साँचे में ढालते हैं, तो पशु स्तर को जा पहुँचते हैं। मनुष्य बनना है, तो खुद का रास्ता खुद ही ढूँढ़ना होगा।

यह बारिश का पानी और मेरी कहानी

– कौशल कुमावत <shikshantar@yahoo.com>

पिछले साल मैं डॉ. पी. सी. जैन के घर गया, वहाँ उन्होंने पानी बचाने का एक सिस्टम लगा रखा था। उन्होंने बताया कि वर्षा का जो जल छत पर गिरकर बह जाता है, उसे इकठ्ठा करके और फिल्टर करके ट्यूबवैल में डाला जा सकता है। इससे जल स्तर बढ़ता है व उसमें पानी की कठोरता व लवण भी खत्म हो जाते हैं। मुझे यह सिस्टम बहुत अच्छा लगा। इससे पानी का संकट खत्म हो सकता है।

मैं शिक्षान्तर में कुछ साथियों के साथ जुड़ा और यह सिस्टम लगाना सीखा। यह सिस्टम लगाने के दौरान कई चुनौतियाँ भी सामने आई, जैसे – हमें छत से लटककर भी पाइप लगाने थे। चूँकि हम सीख ही रहे थे, इसलिए कई गलतियाँ भी हुईं, पाइपों को जोड़ने में भी दिक्कतें आईं।

अब मैं पानी से सम्बन्धित पुस्तकें, लेख आदि पढ़ता हूँ और फिल्में देखता हूँ। सी. एस. ई. की फिल्म 'जल योद्धा' से मैंने प्रेरणा ली, जिसमें अलग–अलग क्षेत्रों में लोगों को पुराने तरीकों से जल संरक्षण करते दिखाया गया है, जैसे – रेगिस्तान में लोग बेरियाँ बनाते हैं। मैंने अलग–अलग लोगों से पानी के बारे में चर्चाएँ की। उदयपुर के श्री अनिल मेहता की इस बात से मुझे जोश मिला कि 'आँकड़ों और कागजी मापदण्डों से कुछ नहीं होता; कम से कम हम उस अनमोल पानी को तो बचाएँ, जो हमें बारिश के रूप में मिल रहा है। मैं युवाओं के साथ मिलकर नाटक द्वारा पानी के बारे में जानकारी देने की भी कोशिश करता हूँ।

पहले मैं अपने घर में पानी लेने के लिए नल खोलता था तो मुझे ध्यान नहीं रहता था कि मैं कितना पानी निकाल रहा हूँ। परन्तु अब मैं जब भी पानी का उपयोग करता हूँ, तो ध्यान रखता हूँ। अब पानी के प्रति मेरा नजरिया बदल गया है।

जब मैं लोगों से पानी के बारे में बात करता हूँ, तो कुछ लोग यह सवाल करते हैं कि अगर हमारी छत का पानी हमारे ट्यूबवैल में इकट्ठा होने के बजाय पड़ौसियों के ट्यूबवैल में चला जाएगा, तो हमें क्या लाभ होगा? मुझे लगता है कि पानी तो प्रकृति की देन है। अगर हम ट्यूबवैल के जरिये जमीन से पानी निकालते हैं, तो हमारा फर्ज़ बनता है कि हम धरती को वापस कुछ तो दें। जब मैं पानी बचाने के लिए दूसरों की मदद कर रहा हूँ तो आप भी पानी को बचाने के लिए कुछ न कुछ कर सकते हैं। इस पर संवाद के लिए आप आमंत्रित हैं।

स्वपथगामी संगीत कार्यशाला

स्वपथगामी नेटवर्क में शामिल अनेक साथी संगीत का अभ्यास कर रहे हैं। संगीत को लेकर नए प्रयोग करने और साथ मिलकर अलग-अलग प्रकार का संगीत सीखने के लिए 13 से 16 जून तक इन्दौर में 'स्वपथगामी संगीत कार्यशाला' का आयोजन हुआ। इस कार्यशाला के कुछ अनुभव प्रस्तुत हैं :-

''पहल समूह में हम लोक –गीतों पर विशेष ध्यान देते हैं, उसी प्रकार मैं जानना चाहता था कि अन्य समूह किस प्रकार के संगीत का अभ्यास करते हैं? क्या संगीत में कोई अभिनव सृजन हो सकता है? प्रचलित फिल्मी और पॉप संगीत का आज समाज पर क्या असर है और उसके क्या विकल्प हो सकते हैं? नए वाद्यों की खोज की क्या सम्भावना है? ऐसे सवाल मन में थे।

कार्यशाला में तीन समूह बनाए थे। प्रत्येक समूह ने एक–एक नया गीत लिखा और उसे संगीतबद्ध किया। यह मेरे लिए बिल्कुल नया अनुभव था। इस दौरान मुझे महसूस हुआ कि संगीत कितनी अधिक एकाग्रता और मुक्तता से किया जाने वाला सृजन है। हमारे समूह ने पानी के संरक्षण की प्रेरणा देने वाला गीत बनाया। हम जहाँ रहतें हैं वहाँ पानी का गम्भीर संकट है। गीत लिखते वक्त तो पानी के विषय में मन में बहुत सारे विचार घुमड़ रहे थे। मगर उन सभी विचारों का गीत के लयबद्ध बोल में रूपान्तरित होना आसान नहीं था।''

– अमित, इन्दौर <indore_amit@rediffmail.com>

''संगीत कार्यशाला में मेरा खास अनुभव गाने बनाने में रहा। क्योंकि जो भी गाने हमने बनाए, वे सब मिलकर बनाए हुए थे। हमने किसी फिल्मी गाने की नकल नहीं की। गानों के बोल हमारे थे और संगीत भी हमने ही दिया। यह पूरी प्रक्रिया मेरे लिए बहुत अनूठी थी।

पहले मैं केवल फिल्मी गाने ही गुनगुनाता रहता था। अब मैं अपने खुद के गाने बनाने की कोशिश करता हूँ। हाल ही में हमने शिक्षान्तर में हर शनिवार 'म्यूजिक नाइट' आयोजित करते हैं। इसमें बच्चे, युवा और उनके माता–पिता भी शामिल होते हैं। अलग–अलग समूह में हम नए गाने बनाते हैं, जैसे – कुछ शब्दों को लेकर उन्हें गीत का रूप देना, मुँह और शरीर के अन्य अंगों से ध्वनियाँ निकालते हुए उन्हें संगीतमय बनाना। इस कार्यशाला के बाद मैं बहुत खुलापन महसूस करता हूँ।''

– निर्मल प्रजापत, उदयपुर <shikshantar@yahoo.com>

''इस कार्यशाला से सबसे बड़ी चीज जो मैंने ग्रहण की, वो यह है कि एक संगीतकार को तथा उसके द्वारा बनाए गए संगीत को उसके आसपास का वातावरण, समाज, उस स्थान की मूल सभ्यता आदि कैसे प्रभावित करते हैं? इस दृष्टि से मुझे लगा कि शायद वो ही संगीत है, जिससे हर आम आदमी भी अपने आपको जोड़ सकता है।''

– हेमन्त, दिल्ली <capt_hemant@rediffmail.com>

अस्पताल के 10 फायदे!

10. नई–नई रासायनिक दवाइयाँ बनाने और एक्सपेरिमेंट्स करने के लिए हर वर्ष लाखों जानवरों को मार सकेंगे।

9. खुद को बीमार साबित करने के लिए डॉक्टरों से प्रमाणित करवा सकेंगे।

8. अंग्रेजी दवा कम्पनियों के व्यवसाय को अपने शहर और गाँव में फैलाने में मदद कर सकेंगे।

7. स्वास्थ्य के लिए प्रचलित परम्परागत ''सेवाओं'' को ''धन्धा'' बनाकर लूटने का साधन बना सकेंगे।

6. गाँवों में प्रचलित इलाज के अलग–अलग तरीकों और प्राकृतिक चिकित्सा के तरीकों को अन्धविश्वास साबित कर सकेंगे।

5. आधुनिक चिकित्सा उपकरणों और मशीनों का विदेशों से आयात कर सकेंगे।

4. डॉक्टरों और दवा–निर्माताओं के बीच दोस्ती बढ़ाने में मदद कर सकते हैं, ताकि वे दोनों खूब मुनाफा कमा सकें।

3. नई–नई बीमारियाँ पैदा करके उन्हें लोगों पर लागू कर सकेंगे।

2. स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सस्ती और सुलभ जड़ी–बूटियों को आम आदमी की पहुँच से दूर करके उन्हें अमीरों के लिए पेटेंट करा सकेंगे।

1. अपने शरीर के बारे में सोचने–समझने के झंझट से मुक्त हो सकेंगे।

साइकिल यात्रा

आगामी कार्यक्रम

यदि आप घूमने और सीखने की इच्छा रखते हैं और उसके दौरान अपने पर्यावरण से रिश्ते के बारे में नए प्रयोग करना चाहते हैं, ग्रामीण जीवन, समाज एवं संस्कृति को समझना चाहते हैं, तो आप हमारी साइकिल यात्रा में आमन्त्रित हैं। यह यात्रा 25 अक्टूबर से 31 अक्टूबर तक होगी।

यह यात्रा उदयपुर के आसपास के जंगलों में बसे गाँवों से होती हुई जाएगी। इसमें हम पैसे के इस्तेमाल के बजाय ऐसी चीजें बनाएँगे, जिनके बदले में हमें खाने–पीने का सामान और सोने की जगह उपलब्ध हो सके। हमारा प्रयास रहेगा कि हम गाँवों के लोगों के साथ 'लर्निंग एक्सचेंज' (एक–दूसरे के साथ सीखने का आदान–प्रदान) करें।

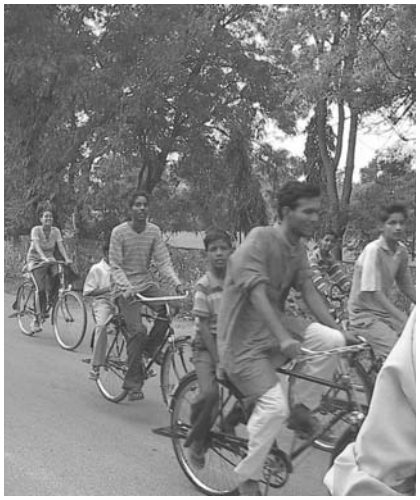

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–
शम्मी नन्दा <shammi_nanda@yahoo.com>
फोन : 0294-2451303

आमन्त्रण

आज हमारे सामने यह बहुत बड़ी चुनौती है कि हम इस बनी–बनाई दुनिया में अपनी पहचान और अपने तरीके से जीवन जीने की आजादी को कैसे कायम रखें? अमानवीय व्यवस्था के जाल से निकलकर अलग–अलग विकल्प कैसे बनाएँ? आज यह जरूरी हो गया है कि हम अपनी क्षमताओं को पहचानकर सृजनात्मक जीवन की शुरूआत करें, जिसमें हम आपसी विश्वास व अन्तर्निर्भरता पर आधारित स्वराज हासिल कर सकें। इसके लिए हर व्यक्ति को अपने सीखने की प्रक्रिया को अपने हाथ में लेना पड़ेगा।

स्वपथगामियों द्वारा शुरू की गई यह पत्रिका विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद स्थापित करने की कोशिश है, जिसके माध्यम से हम अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं।

पत्रिका में जिन नए अवसरों का उल्लेख किया गया है, उनके बारे में विस्तृत जानकारी के लिए आप उनसे सीधा सम्पर्क कर सकते हैं।

हम उन सभी लोगों को आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए–नए प्रयोग कर रहे हैं और साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। हम उन लोगों को भी आमन्त्रित करते हैं, जो इस पत्रिका के सम्पादन में सहयोग करना चाहते हैं। हर अंक में हम संवाद के लिए एक प्रश्न रखते हैं तथा उस पर व्यक्त प्रतिक्रियाओं को अगले अंक में प्रकाशित करते हैं। इस बार का प्रश्न है – **''मशीनीकरण से मुक्त होने के लिए आप अपने स्तर पर क्या प्रयास कर रहे हैं?''**

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–
रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>
अनीश सिंह <anish.manzil@rediffmail.com>
अमित <indore_amit@rediffmail.com>
c/o शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 (राजस्थान)
फोन – 0294–2451303